चतुर्थ अध्याय

''हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में दलित चेतना''

चतुर्थ अध्याय
"हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में दलित चेतना"

(खारे जल का गाँव, मोंगरा, सुबह की तलाश, जंगल के आसपास के संदर्भ में)

1) चेतना का निर्माण ।

2) चेतना का अर्थ ।

3) दलितों में चेतना निर्मिती के कारण ।

4) दलितोध्दार एवं दलित ।

5) जागरण का कार्य ।

6) दलित चेतना की आवश्यकता ।

7) आलोच्य उपन्यासों में चित्रित दलित चेतना ।

8) निष्कर्ष ।

चतुर्थ अध्याय
"हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में दलित चेतना"
(खारे जल का गाँव, मोंगरा, सुबह की तलाश, जंगल के आसपास के संदर्भ में)

आँचलिक उपन्यास का एक विशिष्ट अर्थ है। आँचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। इस उपन्यास में जनचेतना का संबंध जनपद से होता है और वह जनपद की ही कथा है। सामान्य गाँवो की सामान्य समस्याओं और जीवनमूल्यों की कथा कहना उनका उद्देश होता है। आँचलिक उपन्यासों में अंचल अपनी विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अंचल के जीवन की सारी परंपराओं, ऐतिहासिक घटनाओं, प्रगतियों, शक्तियों, छवियों का जितना प्रभावी चित्रण होगा उतना ही लेखक सफल रहेगा। आँचलिक उपन्यासों में जीवन की समस्याओं, चेतनाओं, प्रकृति के सौंदर्य का अधिक महत्व रहा है।

आँचलिकता के निर्णायक तत्वों में अंचल विशेष की भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक परिवेश, उनकी समस्याएँ, समस्याओं के कारण उत्पन्न पिछडापन, जनजीवन की मान्यताएँ एवं विश्वास आदि है। एक तरह से ये चारों निर्णायक तत्व कार्यकारण भाव से जुडे हुए अंचल की समग्रता को भीतरी-बाहरी दृष्टि से उजागर करने का प्रयत्न करते है। असली भारत गांव और इन दूर दराज अंचलों में ही स्थित है। आँचलिकता इन्हीं स्थिति, परिस्थितियों की संश्लिष्ट चेतना है जो जीवन के अनुभवों से उपजी है। जीवनानुभूति और जीवनचेतना का आपसी संबंध रहा है।

दलितचेतना के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए आँचलिकता में मोटी रेखाएँ खींचना भी संभव नहीं। दलित साहित्य में उनकी चेतना, उनकी प्रेरणा, उनकी समस्या आदि मिलती है। दलित साहित्य के मूल में चेतना की भावना कार्यरत है। भोगा हुआ यथार्थ का चित्रण करना ही उनका लक्ष्य रहा है।

1) चेतना का निर्माण :-

दलितों का जीवन चिंतन का विषय रहा है। आज के साहित्य में इसे विशेष स्थान मिला है। प्रेमचंद, निराला, भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, भगवतीप्रसाद शुक्ल, जगदीशचंद्र, मदन दीक्षित, अमृतलाल नागर, शिवप्रसाद सिंह आदि जैसे अनेक रचनाकारों ने अपनी कलम से दलितों का जीवन चित्रित किया। आज धीरे-धीरे दलितों में चेतना एवं अपने अधिकार की रक्षा का, अस्मिता का भाव बढ़ने लगा। यहाँ स्पष्ट है कि आज दलित जागृत हो रहा है। जातीयता का विरोध करके नवमानवता का निर्माण कराने का महत्वपूर्ण कार्य साहित्य के माध्यम से हो रहा है। अत: साहित्य दलित चेतना का पक्षधर है। सरकारी विकास योजना, उदारनीती, संविधान की सहाय्यता, समाजसेवकों और सेवाभावी व्यक्तियों के कार्य का परिणाम, शिक्षा प्रसार आदि कई कारणों से दलित समाज चेतित हो रहा है।

आज के उपन्यास मानव समाज के संघर्ष को गहरी संवेदना से प्रस्तुत करने में सक्षम है। मानव समाज एवं जीवन की दारूणमय स्थितियों को चित्रित करने में सफल है। किसान, नारी, मजदूर, संघर्षरत दलित तथा उनकी आशा आकांक्षाओं को व्यक्त करने का कार्य 'आँचलिक उपन्यास' कर रहे है। हिन्दी साहित्यिकारों ने साहित्य में लोकसंस्कृति, लोकजीवन को स्थान देकर 'जनवादी साहित्य' का निर्माण किया। इसे प्रगतिवादी चेतना का लक्षण मानना अनुचित नहीं होगा।

हिन्दु संस्कृति धर्मग्रंथपर आधारीत है, तो धर्म गुरू समाज व्यवस्था के कर्ता बने। चार्तुवर्ण व्यवस्था में दलितों को क्षुद्र, अपमानित, लांछित माना गया। आजादी के साथ परिवर्तन का कार्य शुरू हुआ। दलितोध्दार, दलित जागरण, दलित संगठन समानता के रूप में कार्य आरंभ हुआ। समाज का तथा राजनीतिक नेताओं का कार्य, शिक्षा एवं विकास योजना आदि के परिणाम स्वरूप दलित चेतित हुआ। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विद्रोह शुरु हुआ, उसे चेतना के अर्थ में लिया जा सकता है। डॉ. मोहनलाल कपूरने इसे ''मानसिक अवधान माना,

जिसके अंतर्गत सविवेक, संम्प्रेषनीयता, जागरुकता, अनुभूति, मनोविज्ञान, संवेदना आदि विशेषताएँ मानी।''[1]

मराठी साहित्य की 'दलित साहित्य' एक उपलब्धि है। उसमें दलितों की वेदना, पीड़ा, कथा को वाणी मिली है। उसमें उनकी चेतना मुखर हो उठी है। हिंदी में भी दलितों के जीवन का चित्रण यत्र तत्र देखने को मिलता है। डॉ. नामवरसिंहजी ने कहा है - ''पिछले दशक से दलितों, स्त्रियों एवं समाज के विभिन्न तबको के रचनाकारों ने परंपरागत ढाँचे को हिलाने, डुलाने, कुछ तोड़ने एवं नया जोड़नेवाले उपन्यास लिखे।''[2] यहाँ स्पष्ट है परंपरा से हटकर अछूतों, उपेक्षितों का जीवन चित्रण होने लगा। इसे साहित्यिक क्रांति का प्रारंभ माना गया। आदिकालीन सिध्द साहित्य, नाथ साहित्य, कबीर, रैदास की रचनाएँ जातीयता का विरोध करती है। डॉ. सुरेश बत्रा ने ''दलित और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करनेवाला पहला साहित्यिकार प्रेमचंद को माना है।''[3] प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रय', 'कायाकल्प', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', निराला के 'कुल्लीभाट', उग्रजी के 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी', वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र', रांगेय के 'कब तक पुकारुँ', नागर के 'नाचो बहुत गोपाल', जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना', मदन दीक्षित का 'मोरी की ईट', दया पवार का 'अछूत', वृदांवन लाल का 'भुवन विक्रम', सिताराम शरण का 'अंतीम आकांक्षा', शिवप्रसाद का 'शैलुष', यज्ञदत्त का 'बदलती राहें' आदि कई रचनाओं में दलित जीवन, उनकी समस्या, चेतना का वर्णन मिलता हैं। राहुल सांकृत्यायनजी की रचना 'जय यौधेय' का अर्जुन का कथन देखिए, ''अब मैं समझता हूँ की अपनी जाति के टुकड़े-टुकड़े करके हमने स्वयं अपने आप को अपात्र और लांछन का पात्र बनाया।''[4] यह कथन आत्मचेतना का प्रतिक ही हैं।

2) चेतना का अर्थ :-

मानव सजीव हैं। अत: जीव और चेतना का संबंध रहा हैं। जड़ चेतनाहीन होता हैं। चेतित करनेवाली प्रवृत्ति चेतना होती हैं। चेतना का अर्थ जीवन में मिलनेवाली प्रेरणा हैं।

वह एक ऐसी शक्ति हैं, ताकद हैं ज्यों अन्याय के विरोध में लड़ सकती हैं। वह एक प्रेरक शक्ति भी हैं। उसे अस्तित्व की रक्षा की भावना एवं विद्रोह करने की समर्थ भावना माना है। चेतना के कारण इन्सान अपने पथ पर अपने तत्वों को समेटकर चलने का सफल प्रयास करता हैं। यह चेतना जीव-जगत में ज्यादातर दिखाई देती हैं। चेतना अत: भावधारा को मानवी सहज प्रवृत्ति माना हैं। उसके कई अर्थ हैं।

मराठी शब्दकोष में चेतना का अर्थ - 1) ''चेतना चैतन्य, ज्ञान, होश।

2) प्राणशक्ति, जीवनीशक्ति।

3) पौरुष, जननशक्ति।

4) आकलन शक्ति, ग्रहण शक्ति।''[5]

हिंदी-मराठी शब्दकोश में चेतना का अर्थ -''चेतना, शुध्दि, शुध्दिवर असणे (जागे होणे) चेतना सावध होणे।''[6]

अंग्रेजी शब्दकोश में चेतना का अर्थ - "Awareness, Consciousness|"[7]

चेतना का अर्थ प्रेरणा, जागरुकता, शक्ति तथा विद्रोह हैं। यहाँ चेतना का अर्थ अपने आपको पहचानना, विद्रोह करना रहा हैं। समाज व्यवस्था का, समाज जीवन एवं मानव जीवन का यह एक अंग हैं। वैश्विक तत्व चेतना चैतन्य ही हैं। साहित्य में भी इसके दर्शन होते हैं। शोषण के खिलाफ विद्रोह ही चेतना मानना अनुचित नहीं होगा।

प्राचीन काल से संपत्ति, सत्ता, वंश, परंपरा के आधार पर निर्धन, गरीब, पीड़ित का शोषण हो रहा हैं। यह शोषण अन्याय, अत्याचार का घृणास्पद व्यवहार हैं। दास एवं दलित संज्ञा, शोषित तथा अधिकार हीन व्यक्ति का बोध करा देती हैं। अर्थात आर्थिक विषमता, परंपरा, अज्ञान, रुढ़ि, जाति व्यवस्था का शिकार बना दास एक दृष्टि से 'दलित' संज्ञा के आशय का प्रतिपादक हैं।

भारतीय समाज व्यवस्था में धार्मिक दासता अति सनातन है। यह बीच-बीच में अनेक जबरदस्त आघात सहन करते हुए भी टिकी है। हब्शियों के समान भारत में शूद्रों, अतिशूद्रों की हालत थी। वे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से दबे हुए थे।

दासों और शुद्रों के दैन्य से स्पष्ट है कि, सामाजिक जीवन में बलिष्ट मनुष्य निर्बल को सहज ही परास्त कर देता हैं। वरिष्ठ अपनी वरिष्ठता, धार्मिकता, परम्परा के सहारे निर्धन और बेसहारा लोगों को अपना सेवक बनाकर अपना सामाजिक रौब टिका देते हैं। कुचले, दबें, अधिकार से वंचित दास को 'दलित' कहा गया।

प्राचीन काल से ही मानव, मानव का शोषण करता आ रहा हैं। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दृष्टि से कमजोर पिछडे लोगों का दमन-चक्र चलता आ रहा हैं। इसी कारण पीसा जानेवाला मानव 'दलित' ही हैं। खटमल प्रवृत्ति का शिकार दलित रहा हैं। वास्तव में शुद्र और दास में मूलतः अंतर हैं, परंतु समाज में जो कुचले हुए है, वे 'दलित' हैं। इस निर्दलन शोषण के अनुसार क्षुद्र और दास दलित ही थे। प्राचीन काल से दलितों को बहिष्कृत और अस्पृश्य माना गया हैं। ईमानदारी से निष्काम समाज सेवा इनका एक मात्र कर्तव्य रहा हैं। दलित कर्म के अधिकारी हैं और दलितेतर उसके फल के अधिकारी बनें। रुढी के कायल, भीरु दलितों को अज्ञान, दरिद्रता के अंधकार में रखने के मतलबी प्रवृत्ति के रहे हैं। उच्च- वर्णियों द्वारा अपनी प्रतिष्ठा, वरिष्ठता की रक्षा के लिए छूत-अछूत, उच्च-नीच, पाप-पुण्य, मोक्ष-नरक जैसे विचारों की नीति का आधार लिया गया हैं।

. दलितों की पशुतुल्य, अमानवीय, बहिष्कृत जीवन पध्दती से उन्हें कभी परिचित नहीं होने दिया अगर ऐसा हो जाता तो उच्च वर्ग की प्रतिष्ठा, सम्मान, आदर को धक्का पहुँच जाता। अर्थात सामाजिक क्रांति हो सकती, परंतु मालिक या शासक अपना शासन निर्विघ्न चलाने के लिए अपने दासों, सेवकों को ज्ञानी नहीं होने देते। इस नीति और समाज व्यवस्था का लक्ष्य दलित बना हैं। गिध्द और चीलों की भाँति उनके शरीर को नोंच-नोंच कर खाने से दलित

अस्थिपंजर अर्थात कंकाल के रुप में रहा हैं। समाज में दलितों के दैन्य का कारण सवर्ण हैं। जिसके सहारे सवर्णो ने विविध जातीयों को वंश परंपरागत अस्पृश्य समझा हैं। ऐसे दलितों की संख्या काफी बड़ी हैं। जो समाज के कलंकित अंग के रुप में विद्यमान हैं।

ग्रामों में बदलते स्वरुप पर विचार करते हुए डॉ. ज्ञानचंद गुप्त कहते हैं - ''परंपरा और प्रगति, अंधविश्वास और विज्ञान, स्वार्थलिप्सा और सरलता का संघर्ष, गांव की जीवन स्थिती को नई भंगिमा प्रदान कर रहा हैं।''[8] आज पुराने रीतिरिवाज नहीं रहें, दलितों के जीवन में नया बदलाव आ गया हैं। जो सवर्ण उन्हें स्पर्श करने से अपवित्र होते थे, वे शुध्दीकरण की विधि करके शुद्ध हो रहे हैं परंतु अस्पृश्यों को शुध्द कर लेने का कोई साधन नहीं हैं। वे जन्म से ही अपवित्र हैं। आजादीं के पहले भी दलितों का जीवन अधिक दयनीय एवं पीड़ित था परंतु उस युग के प्रभावों को परिस्थितियों को नहीं भूला जा सकता। जिसने अनेक मानवतावादी विभूतियों और संस्थाओं को दलितोध्दारार्थ जन्म दिया अत: स्वातंत्र्यपूर्व काल से ही चेतना का निर्माण हो रहा था।

आजादी आंदोलन में राष्ट्रीय एकता के साथ-ही-साथ सामाजिकता, समता, बंधुता पर बल दिया गया। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने जातीयता, जातीय भेदाभेद को ठुकरा दिया। जातीभेद निषेध की प्रक्रिया शुरु हो गई। सिध्द, नाथ, संत परंपरा से प्रेरणा पाकर यह विचारधारा प्रवाहित हो गई तथा समाज सुधारकों के कार्य से सबल होकर यह चेतना अविरत बहने लगीं। दलित जागरण एक राष्ट्रीय कर्म बना। महात्मा गांधीजी ने इसे 'हरिजन' कहकर दलितोद्धार को ईश्वर पूजा माना। गांधी, फुले, आंबेडकर, शाहू आदि के कार्य से अपनी खोयी हुई अस्मिता को पानेवाला दलित चेतित हुआ, जाग उठा। यहीं चेतना आगे चलकर साहित्य के रुप में बहने लगी।

निष्कर्ष : - यहाँ स्पष्ट है कि, समाज ने दलितों का क्रूरता से शोषण किया। उनपर बहुत सारे जुल्म ढाए। अंत में यातनाएँ सहते-सहते उनके मन में जो चिनगारी भड़की वहीं चेतना बनी।

नया जीवनयापन करने के लिए उन्हें प्रेरणा मिलीं। इसी चेतना ने, प्रेरणा ने जुल्म से लड़ने की शक्ति दी। स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर आज तक व्यक्तिगत और शासकीय स्तरपर दलितोद्धार और दलित जागरण के लिए किए गये प्रयत्नों के फलस्वरुप अस्पृश्यता की तीव्रता कम हो गई। दलित अपने अधिकार, समता और मुक्ति के लिए सजग बनता रहा परंतु कुल, जाति और धर्म के अभिमानी सनातनियों का संपूर्ण सहयोग न मिलने से दलितों की शोषित, दबी शक्तियाँ विद्रोह के लिए प्रस्तुत हुओ। यह विद्रोह आत्मरक्षा के लिए, अस्तित्व के लिए हो रहा हैं ऐसा लगता हैं। यह चेतना सकारात्मक उपयुक्त रहेगी, नहीं तो समाज के हित के लिए हानीकारक बनेगी। अब दलितों में चेतना का निर्माण होना समयानुकूल लगता हैं। इस विद्रोह को सहीं दिशा मिलना अनिवार्य हैं। मतलब, मजहब का रुप देकर यदिं विद्रोह होगा तो सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा उसका रुप अलग बनेगा, ऐसा मुझे लगता हैं।

3) दलितों में चेतना निर्मिती के कारण :-

नवजागरण काल में समाज सुधार, रुढ़ियों का विरोध, नारी की प्रगति का समर्थन, देशवासियों पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति विद्रोह, शोषित-पीड़ित, दीन-हीन दलित वर्ग के लिए अधिकारों की मांग, उस वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति आदिं भाव दिखाई देते हैं। नवजागरण काल में साहित्य ने सिर्फ राजनीतिक आंदोलन को ही दिशा नहीं दी, बल्कि सामाजिक एकता को भी बढ़ावा दिया। सामाजिक समस्याओं को उजागर किया। सामंतवाद प्राचीन रुढ़ी-परंपरा, धर्म का विकृत रुप आदि को चुनौति देने का तथा समाज-सुधार का कार्य भारतेंदु ने किया। इसके साथ ही धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धार्मिक उदारता का प्रतिपादन करते हुए परोपकार एवं मानव प्रेम का संदेश दिया। इसी कारण राजनीतिक और साहित्यिक चेतना को नई दिशा मिलीं। देश के दलित वर्ग की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित हुआ। इसप्रकार सहीं अर्थों में प्रथम बार वर्ण व्यवस्था एवं अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों का विरोध, दलितों, किसानों, मजदूरों एवं नौकरों की असहायता, आवास की समस्या तथा नारी की दुर्दशा आदि विषयों पर बड़ी सहानुभूति के साथ रचनाएँ बनी। इसमें दलितों की असहाय स्थिति में परिवर्तन लाकर

उन्हें मानवीय अधिकार प्रदान करने की कामना भी की गई। इस युग की दृष्टि व्यापक एवं मानव कल्याण की भावना से परिपूर्ण थी।

मानववादी विचारधारा से प्रेरित होकर ईश्वर के स्थानपर मानव को ही अध्ययन, मनन एवं चिंतन का विषय बनकर मानव महत्ता का उद्घोष किया गया। भारतीय दलित वर्ग के उत्थान के लिए मार्क्स के विचार एवं सिध्दांत उपयुक्त सिद्ध होते हैं। मार्क्स प्रणीत 'सर्वहारा वर्ग' और 'दलित वर्ग' में बहुत समानता हैं। इसलिए हम सर्वहारा वर्ग एवं दलित वर्ग में पाए जानेवाले साम्य और भेद को देखते हैं। मार्क्स प्रणीत सर्वहारा वर्ग का विवेचन करते समय कई जगह 'सर्वहारा' शब्द के बदले 'दलित' शब्द का भी प्रयोग किया हैं। संपन्न मनुष्य ने अशांति और असंतोष प्रकट न होने देने के लिए जहाँ अपनी शक्ती से काम लिया, वहाँ उसने अपनी बनाई व्यवस्था की रक्षा के लिए सिध्दांत भी बनाए। उसने निर्बलों और साधनहीन लोगों को संतोष की शिक्षा दी। परलोक में दंड का भय दिखाया और विषमता को बढ़ने से रोकने के लिए दलितों की अवस्था को सह्य बनाने के लिए उसने बलवानों और संपन्न लोगों को दया, सहानुभूति और त्याग का भी उपदेश दिया । इन दो शब्दों में पर्याप्त भेद भी हैं। 'दलित' की व्याप्ती अधिक हैं तो 'सर्वहारा' की सीमित हैं। 'दलित' के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता हैं, तो 'सर्वहारा' केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित हैं। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा वर्ग के अंतर्गत आ सकता हैं। लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए हम बाध्य नहीं हो सकते। इसका कारण यह है कि, सर्वहारा वर्ग केवल मजदूरों तक की सीमित है। भारत में अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक उद्योग-धंधों, यातायात के आधुनिक साधनों और बागानों की स्थापना हुई। जिसके कारण आधुनिक मजदूर वर्ग का जन्म हुआ, आधुनिक कारखानों, खान उद्योंगों, आवागमन के साधनों आदि में वृध्दी हुई। ''दास प्रथा के काल और सामंत युग में साम्यवाद की पुकार का उद्देश था। उस समय की शासन व्यवस्था को दृढ करना और दलित वर्ग को अपने हित के लिए जीवित बनाए रखना।''[9] इससे स्पष्ट हो जाता है कि,

सर्वहारा शब्द की सीमा में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आ जाता है, तो दलित वर्ग आर्थिक विषमता एवं शोषण का शिकार रहा हैं।

मराठी में दलित साहित्य की संकल्पना मराठी साहित्य के लिए एक नई उपलब्धि हैं। जिसमें दलितों की वेदना, पीड़ा व्यक्त हुई है और दलित शक्ति अपने अस्तित्व तथा उद्धारार्थ क्रांति का पथ चुनती रही हैं परंतु हिंदी साहित्य में 'दलित साहित्य' ऐसा कोई अलग साहित्य प्रकार नहीं हैं। दलित आंदोलन ऐसा कोई नया आंदोलन नहीं हैं, परंतु उसमें दलित विवेचन अवश्य हुआ हैं। हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य में दलित जीवन, उनकी हालत, पीड़ा, व्यथा आदि का चित्रण दलित आंदोलन के रुप में नहीं हुआ। आदिकालीन कुछ सिध्द और भक्तिकालीन रैदास तथा कृष्णदास दलित थे परंतु उनके साहित्य पर आंदोलनकारी तथा दलित-साहित्य का आरोप करना उनके प्रति अन्याय होगा, क्योंकि उनका दृष्टिकोन जनजागरण, समाज जागृती का था। दलित साहित्य निर्माण का नहीं, दलितेतर साहित्यिकों के द्वारा भी हिंदी में यत्र-तत्र, फुटकल रुप में दलित चित्रण हुआ हैं। इस रुप में हिंदी में दलितों से संबंधित साहित्य को दलित साहित्य कहा जा सकता हैं।

सामाजिक दृष्टि से जनता अन्याय, शोषण, दारिद्रता से पीड़ित थी। दलित जातीयाँ उच्च वर्णों के प्रभाव से दबी हुई थीं। उनका जीवन उपेक्षित और बहिष्कृत था। भक्ति के द्वारा इस हालत से उनका उध्दार हुआ। ईश्वर की विशाल दृष्टि में न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा, न कोई बड़ा है और न कोई छोटा हैं। ईश्वर हर पद-दलित का उध्दारक हैं। वह सबका हैं और सब उसके हैं। आदि संत वचनों से प्रभावित समाज परिवर्तन की ओर बढ़ने लगा।

स्वाधीनता की प्राप्ती ने ग्रामचेतना को बल दिया। स्वतंत्रता से ग्रामीणों में बड़ी आशाएँ जाग उठी। आजादी के कारण सपने सजानेवाले लोगों को सुनहरा भारत देखना था। कुटिर उद्योग बने, कृषि में नया तंत्र स्थापित हुआ, कारखानों का निर्माण हुआ, साथ-ही-साथ भ्रष्टाचार सांप्रदायिकता जातीयता से प्रभावित राजनीति को भी सहना पड़ा। आजादी के

लिए सभी धर्म-जाति, वर्ग के लोगों ने योगदान दिया। भाट-शाहीर काव्य गाते रहें। साहित्यिकारों ने रचनाएँ लिखी परंतु आज उनके सपनें अधूरे रहें हैं। वर्तमान समाज में बदलते हुए जनजीवन और उनके जीवनमूल्यों ने मनुष्य को जटिल बना दिया हैं।

आँचलिक उपन्यासों में ग्रामों की बदलती हुई स्थितीयों, उभरतें नए मूल्य बोधों, परिवर्तित संदर्भों, टूटते-बनते नये संबंध, नई मानसिकता, नये चरित्र विकास की आवश्यकता हैं क्योंकि इन गांवों में वर्ग-संघर्ष पल रहा हैं तथा राजनीतिक चेतना की समझदारी उनमें नई मानसिकता का रुपायन कर रही हैं। दलितों की शोषित-पीड़ित अवस्था तथा उनपर किए जानेवाले जुल्म, अत्याचारों के कारण उनमें जो भाव उत्पन्न हुआ, जो नया विचार सामने आया, उसीको उपन्यासकार ने चेतना के रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं। दलितों ने जो आंदोलन चलाए, उसमें उनके मन का दाह निकला। उन्हें न्याय के रुप में समाज में स्थान मिला। इसी कारण चेतना को बल मिला।

यहाँ स्पष्ट हैं कि, समाज सुधारकों का कार्य, आजादी का आंदोलन, राजनीतिक नेताओं का कार्य, आजादी की प्राप्ति, सरकार की नई नीति, विकास योजना, दलित-संगठन, दलितों में शिक्षा प्रसार, संतों और भक्तों द्वारा जनजागरण, साहित्यिकारों का कार्य, प्रसार माध्यमों का योगदान, प्रगतिवादी विचारधारा, मार्क्स के विचारों का प्रभाव, डॉ. आंबेडकरजी का कार्य आदि कई ऐसे कारण है, जिन्होंने दलितों में चेतना का निर्माण किया। दलित चेतना को बल दिया। दलित संगठित बनकर चेतना से प्रेरित होकर कार्य करेंगे तो दलितों का जीवन विकसित एवं संपन्न होगा ऐसा लगता हैं। साथ-ही-साथ परंपरा से प्रताड़ित, उपेक्षित दलित युवा शिक्षित बनकर अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए आगे बढ़ रहा हैं। यह दलित चेतना का भी एक महत्वपूर्ण कारण लगता हैं।

4) दलितोध्दार एवं दलित :-

मानवता मानव धर्म का सार हैं। दया, बंधुता, क्षमा मानव धर्म की नींव हैं। दूसरों पर दया दिखाना, बेसहारा को सहारा देना, मानवी जीवन की बुनियाद हैं। साधुओं, संतों, महंतो, भक्तों ने अपनी इस विचारधारा को समाज में प्रचारीत किया। परिणामतः सामाजिक परिवर्तन सुचारु ढंग से होने लगा। दया को धर्म मानकर पाप को अभिमान का मूल बतानेवाले धार्मिक व्यक्ति तो प्रेम का महत्व बतानवाले गांधीजी, सेवा की महिमा बतानेवाली मदर टेरेसा, बाबा आमटे के योगदान से सामाजिक जीवन में अमूल्चूल परिवर्तन हुआ। इसी प्रक्रिया के कारण समाज से बहिष्कृत दलित जाग उठा। रुढ़ि, परंपरा, अन्याय, अत्याचार, दमण, शोषण के खिलाफ उन्होंने आंदोलन किए।

स्वातंत्र्यपूर्व काल में मंदिर, पनघट प्रवेश दलितों के लिए निषिध्द था। रास्ते पर खुले आम चलना भी मना था। इसी हालत में जीवन जीने वाला दलित अपनी मुक्ति के लिए डॉ.आंबेडकर के नेतृत्व में संगठित होने लगा। समाजसुधारक, सेवाभावी व्यक्ति, संस्था के कार्य के परिणाम स्वरुप अपनी दासता की जंजीरे तोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। जातीयता, उच्च-नीचता का विरोध करते हुए, मानव एक हैं, यहीं सिध्दांत स्पष्ट किया हैं। समाज परिवर्तन के साथ-ही-साथ दलितों को अपने अधिकार के प्रति सजग किया। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर उनके लिए मसींहा रहे हैं।

डॉ.बाबासाहब आंबेडकर द्वारा धर्म परिवर्तन करने की घटना दलितोद्धार एवं दलितचेतना के लिए महत्वपूर्ण सोपान रहीं। उन्होंने सन 1935 ई में अपने धर्म परिवर्तन की जो घोषणा की थी, उसे सन 1956 ई. में बौध्द धर्म की स्विकृति से पूरा किया। डॉ.बाबासाहब आंबेडकर की भाँति कर्मवीर भाऊराव पाटील ने सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा प्रसार को अनिवार्य माना। इसके लिए शिक्षा के वटवृक्ष की छाया में अनेक दलितों का उद्धार किया। महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले, शाहू महाराज ने यहीं कार्य किया था। शिक्षित दलित जाग

उठा, चेतित हुआ। स्पष्ट है शिक्षा जीवन परिवर्तन का एक साधन हैं। दलितों की दासता से डॉ.बाबासाहब आंबेडकर के मन को जैसी वेदना होती थी, वैसी वेदना दलितों की हालत पर कर्मवीर भाऊराव पाटीलजी के मन में भी थी। दलितों के हितों की रक्षा करने और सामाजिक उन्नति के लिए कार्य किया। सरकार ने भी इसी कार्य को बढ़ावा देने हेतु कानून बनाए। सरकार ने संविधान धारा क्रमांक 15 के अनुसार धर्म, वंश, जाति और लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के संबंध में भेद करना मना किया और दुकानें, सार्वजनिक उपहारगृह, कुएँ, तालाब सभी के लिए खुले किए । संविधान धारा क्रमांक 17 के अनुसार अस्पृश्यता नष्ट कीं। 330 और 332 की धारा के अनुसार पिछडी हुई जातियों (Scheduled Castes) और आदिम जातियों के लिए लोकसभा और राज्यविधान सभा में सीटें आरक्षित रखी । धारा क्रमांक 335 के अनुसार पिछडी हुई जातियों और आदिम जातियों के लिए नौंकरीयों में आरक्षित सीटों की व्यवस्था की। 1950 ई. में अस्पृश्यता नष्ट की गई। दलितोद्धार के लिए भारत सरकार ने व्यापक स्वरुप का कानून पास किया।

''कानून के आगे सब समान, एक व्यक्ति, एक मत विषम समाज रचना को सिधी रेखा पर लाने के लिए, कमजोर वर्ग के लिए विशेष छूट, आदि बातों का अंतर्भाव राज्यघटना में किया।''[10]

इसी प्रकार प्रांतीय सरकारों ने भी अस्पृश्यता दूर करनेवाले कानून पास किए और साथ-ही-साथ मंदिर प्रवेश तथा सामाजिक अन्याय दूर करने के लिए कानून भी पारित किए। दलितोध्दार का कार्य तीन रुपों में हो रहा हैं - (अ) स्वातंत्र्यपूर्व समाजसुधारकों का सुधार मार्ग, (ब) सरकारी प्रयत्न, (क) राजनीतिक क्षेत्र का प्रभाव आदि। स्वातंत्र्यपूर्व काल में जन जागरण के लिए अनेक समाज सुधारकों ने कार्य किया। उन्होंने झूठे, मतलबी उच्च वर्गीय जनों का पर्दाफाश करके दलितों में स्वाभिमान जगाया। स्वतंत्रता के पश्चात केंद्र और राज्य सरकारों ने दलितोद्धार को प्रोत्साहन देने के लिए समय-समय पर अनेक कानून पारीत किए। पिछडी

हुई जातियों की आर्थिक कमजोरी जानकर उनके बच्चों की महाविद्यालयीन शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों का प्रबंध बड़े पैमाने पर किया।

दलितों के लिए कर्ज की व्यवस्था करके महाजन, साहुकार के शिकंजों से दलितों को मुक्ति दे दीं। नौकरी में आरक्षण रखकर अर्थभाव, बेकारी जैसी समस्या हल की गई। राजनीतिक प्रभाव से भी दलितोद्धार का कार्य हुआ। राजनीति में सभी वर्गो, धर्मों, स्तरों के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। आज धीरे-धीरे दलित राजनीति में सक्रिय हो रहा हैं। परिणामतः उनका सामाजिक संपर्क बढ़ने लगा हैं। सरकार का कामकाज चलाने के लिए दलित समाज में भी व्यक्ति आगे आने लगे। उन्हें मंत्री पद की जिम्मेदारी सौंपी गई हैं। दलितों से संबंधित राजनीतिक दल भी बने हैं। चुनावी राजनीति से इसका गहरा संबंध स्थापित हो रहा हैं। राजनीति और जाति व्यवस्था का संबंध स्थापित होना, उसके बल पर चुनाव लड़ना, मजहब का आधार लेना ऐसी घिनौनी हरकतें हो रही हैं। ऐसी घटनाएँ शोषण का एक आयाम बन रही हैं। दलितों के लिए सामाजिक समता के लिए यह एक चुनौती बनी हैं, ऐसा लगता है परंतु यह सच है कि, आज का दलित राजनीति के क्षेत्र में भी आगे बढ़ रहा हैं।

निष्कर्ष :- यहाँ स्पष्ट है, दलितों के उद्धार के लिए सिर्फ कानून की सहायता काफी नहीं हैं। उसके साथ दलितों में आत्मचेतना की भावना पैदा होनी चाहिए। यही आत्मचेतना बढ़ेगी तभी दलित जाग उठेगा। दलितों को अपने उद्धार का मार्ग स्वयं ढूँढना चाहिए और इसलिए उनके संगठन की आवश्यकता हैं। उसके लिए सर्वस्व समर्पण की भावना चाहिए।

दलितों में क्रांति की भावना जगाकर उन्हें क्रांति के लिए उद्दीप्त करना यहीं कार्य दलितोद्धार का हैं। परंतु आज जाति-पाति तथा धर्मबंधन तोड़ने के प्रयास में मनुष्य स्वयं इन बंधनों में बँधा जा रहा हैं, ऐसा लगता हैं।

5) जागरण का कार्य :-

दलित जागरण का कार्य एक राष्ट्रीय कार्य बन गया सभी लोगों ने इसमें अपना योगदान दिया। जब तक सामाजिक समता, समानता, एकता नहीं बनती तब तक राष्ट्रीय एकता और देश की आजादी की रक्षा एक सपना रहेगा। जातीयता की दीवारें गिराकर मानव एकता का भाव बढ़ाना देश के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इसी दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन एवं एकता के लिए कई लोगों ने कार्य किया। उनके कार्य को यहाँ देखना अनिवार्य हैं।

डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर

भारत में दलितों की हीन अवस्था और उनके उद्धार का कार्य युग प्रवाह के साथ हुआ और आज भी हो रहा है। उसमें डॉ.आम्बेडकर, महात्मा गांधी, महात्मा फुले और कर्वे शामिल थे। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर का काल सन 1891 ई. से सन 1956 ई. तक रहा। उनका जीवन कार्य दलितों की खातीर समर्पणशील और त्यागी व्यक्तित्व का प्रतिबिंब हैं। जिसमें अनावश्यक, अन्यायी, झूठीं प्राचीन व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर उभरा हुआ हैं। इस महान विभूती के जन्म से न केवल दलितों को, बल्कि मानवता को मान, प्रतिष्ठा और चेतना का स्वरुप प्राप्त हुआ। समता और स्वातंत्र्य के प्रतिपादक तथा दलितों के भाग्य विधाता के रुप में आम्बेडकर का व्यक्तित्व रहा हैं।

डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर ने प्रथम गोलमेज परिषद में भारतीय दलितों का प्रतिनिधित्व किया और दलितों की माँगे पेश की। द्वितीय गोलमेज परिषद में भी उन्होंने अपनी कुछ शेष माँगे भी पेश की। कालाराम मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह, महाड सत्याग्रह, मुखेड़ ग्राम का सत्याग्रह, रामकुंड प्रवेश सत्याग्रह, रामरथ उत्सव विषयक सत्याग्रह आदि से रुढ़ी प्रिय हिंदु समाज की नींव हिला दी। दलितों की उपेक्षित, बहिष्कृत जिंदगी का नग्न यथार्थ रुप दिखाकर उनके लिए समान हकों की माँग की। उच्च वर्णिय सनातनी हिंदु मन को दलितों की पीड़ा, दर्दभरी पशुवत हालत पर विचार करके भेदभाव ऊँच-नीच, जँत-पात की भेद नीति का त्याग

करने के लिए उत्तेजित किया। जो धर्म न्याय नहीं देता उसे त्याग देने का विचार शुरु हुआ। परिणामत: सन 1935 ई. में उन्होंने अपने धर्मांतर की ऐतिहासिक घोषणा कीं। हिंदु धर्म के खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डॉ.आम्बेडकरजी ने कहा था - "मैं हिन्दु के रुप में जन्मा हूँ, पर हिन्दु के रुप में मरुँगा नहीं।"[11] उनका यह कथन आत्मचेतना को दर्शाता हैं। आम्बेडकर की यह स्पष्ट मान्यता थी कि, धर्म का कार्य समाज को चलाने का है एवं उसे सम्यक दृष्टि से देखने का हैं। बचपन से लेकर मृत्यु तक समाज के भेदभाव को झेलनेवाले इस महान विचारक के दिमाग में हिंदु धर्म के प्रति घृणा समय के साथ बढ़ती ही गई। धर्म परिवर्तन के दूसरें ही दिन यानी 15 अक्तूबर को नागपुर में 'नागपुर नगर परिषद' द्वारा बाबासाहब का "नागरिक अभिनंदन" किया गया। अभिनंदन पत्र में उनको एक महान सामाजिक कार्यकर्ता, उद्धारक, दार्शनिक एवं संविधान विज्ञ की उपाधि प्रदान की गई। उनसें प्रेरित होकर चंडा नामक स्थानपर लाखों लोगों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। वे इस मौके पर उपस्थित रहें। उन्होंने लोगों को परिवर्तन की दिशा में अग्रसर किया। नवम्बर में उनको 'विश्व बौद्ध सभा' में भाग लेने हेतु नेपाल आमंत्रित किया गया। जिस कार्यक्रम का शुभारंभ वहाँ के राजा महेंद्र ने किया, उसकी अध्यक्षता करने के लिए इस महान विचारक को आमंत्रित किया गया। यह बात प्रमाणित करती हैं कि, कम से कम बौद्ध धर्म छुत-अछूत और ऊँच-नीच के भेदभाव से परे होकर विचारकों, विद्वानों एवं दार्शनिकों का आदर करता हैं।

आजादी के पश्चात भारत सरकार में पंडित नेहरु के मंत्री परिषद के सदस्य के नाते उन्होंने सफलतापूर्वक जिम्मेदारी निभाई। दलित नेता, दलितोद्धारक के रुप में उन्होंने अपना योगदान दिया। दलितों का संगठन, दलित चेतना, आत्माभिमान, संविधान में स्थान, आरक्षण आदि क्षेत्रों में उन्होंने महत कार्य किया हैं। परिणामत: वे आज दलितों के देवता बन गए हैं।

महात्मा गांधी

महात्मा गांधीजी ने राष्ट्र की समुन्नत प्रगति के प्रयत्न मानवी धरातल पर किए। जिसमें वे 'राष्ट्रपिता' के पद तक पहुँच गए। उनका हर प्रयत्न समाज सुधार और नवराष्ट्र निर्माण के लिए था। अपने राष्ट्र, धर्म के प्रति श्रद्धा और राष्ट्रीय चरित्र को ठीक करने के लिए उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम बनाया था क्योंकि उनके विचारों में समुन्नत, बलवान, स्वतंत्र भारत का चित्र था। जिसकी पूर्ती के लिए उन्होंने सुधार योजनाएँ शुरु की। इनमें से दलितोद्धार एक महत्वपूर्ण सुधार योजना थी।

महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता को हटाकर दलितों को न्याय, समता, प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए कार्य किया। शांति और दया से लोगों का हृदय परिवर्तन करना यहीं उनका मार्ग था। 25 मई सन 1915 ई. में महात्मा गांधी ने अहमदाबाद में सत्याग्रहाश्रम की स्थापना कीं, जिसकी विशेषता सामुदायिक, धार्मिक जीवन थी। उन्होंने अस्पृश्यता, छुआछूत की समस्या को मानवीयता की दृष्टि से देखा। अत: इसे हटाने के लिए सवर्णों को सहयोग का आवाहन किया। उन्होंने कहा कि, 'हम हमारे पूर्वजों ने सदियों से अस्पृश्यों के साथ जो भारी अन्याय किया हैं, उसका देर से ही सही, पर कुछ तो प्रायश्चित कर सकेंगे।' महात्मा गांधी ने दलितों की कमजोरी देखकर उन्हें संघर्ष से दूर रखा और सवर्ण हिंदुओं को दलितोद्धार के लिए समर्पण की भावना का प्रतिपादन किया। गांधीजी ने कहा हैं ''अन्याय, अत्याचार और हिंसा के सामने मत झुकों।''

दलितोद्धार के कार्य में अंग्रेजों के 'जाति-निर्णय' को असाधारण महत्व प्राप्त हुआ क्योंकि उसके विरोध में किए महात्मा गांधी के अनशन से अंग्रेजों को दलितों के लिए स्वतंत्र चुनाव क्षेत्र देने का निर्णय बदलना पड़ा। दलितों के लिए अलग चुनाव क्षेत्र देने के अंग्रेजों के 'जाति-निर्णय' के विरुद्ध उन्होंने आमरण अनशन किया। 'अग्निपरीक्षा' का यह प्रथम दिन 'अनशन दिन' के रुप में पूरे हिंदुस्थान में मनाया गया। 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना करके

दलितोद्धार एवं दलित जागरण का कार्य जारी रखा। इसके लिए गांधी ने स्वयं को समर्पित किया। उन्होंने 'हरिजन' नाम का साप्ताहिक 11 फरवरी 1930 ई. में. शुरु किया। दलितों के लिए विद्यालय, छात्रावास, उपहारगृह, मंदिर, पनघट भी खुले किए। आगे इस कार्य को सुचारु रुप देने के लिए गांधीजी ने 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना की।

यहाँ स्पष्ट है कि आजादीं के आंदोलन के साथ गांधीजी ने सामाजिक परिवर्तन के लिए भी जन आंदोलन चलाए। दलितों के जीवन में सामाजिक बदलाव लाने की कोशिश की। पत्र-पत्रिका, संगोष्ठि, जनसंपर्क आदि के सहारे यह कार्य किया। मानव की पूजा ही ईश्वर की पूजा हैं यह सिद्धांत स्पष्ट किया। परिणामत: आजादी का आंदोलन प्रबल हुआ। धीरे-धीरे दलितों में चेतना जागृत हुई। राजनीति और समाज सुधार का दुहरा कार्य उन्होंने किया।

महात्मा फुले

महात्मा फुले समाज सुधारक और राष्ट्रभक्त हैं। महाराष्ट्र में सामाजिक सुधारणा में महात्मा फुले का योगदान एवं स्थान महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने किसान, नारी, दलित आदि के लिए कार्य किया। अज्ञान, अशिक्षा के कारण जो क्षति हुई उस पर उन्होंने प्रकाश डाला हैं। शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा, नारी शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किया हैं, जिसके कारण उपेक्षित, प्रताड़ित, दलित एवं नारी भी शिक्षित बनीं। परिणामत: दलित चेतित बना। दलित का उद्धार हुआ।

महात्मा फुलेजी की लड़ाई केवल सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध नहीं थी। सत्तांतर हो या न हो स्वतंत्रता, समता पर खड़ा होनेवाला समाज का निर्माण हो यह उनकी धारणा थीं। सन 1818 ई. में पेशवाई समाप्त होने पर उसके स्थान पर अंग्रेजों का शासन शुरु हुआ। इसी समय ब्राह्मण, भट आदि ने जनसामान्य को देव-धर्म और अपने मतलबी ग्रंथों के आधारपर लूटते थे। अपने धार्मिक ग्रंथों में उन्होंने अविश्वसनीय दंत कथाओं से लेकर मनगढ़ंत कथाओं का समावेश कर दिया। इसे महात्मा फुले ने अपवित्र ग्रंथ घोषित किया। जनसामान्य की हालत अत्यंत बुरी थी, तो दलितों की दुर्दशा चिंतनीय, सोचनीय थी। महात्मा फुले ने ऐसे घृणित

दलित जीवन को देखा और हजारो शुद्रातिशुद्रों को संगठित करके सामाजिक विषमता के विरुद्ध विद्रोह प्रारंभ किया।

महात्मा जोतिराव फुले ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सन 1873 ई. में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना कीं। जाति-भेद, धर्म-भेद जैसी नीति पर हमले किए और इस प्रकार हिंदु धर्म में प्रचलित वेद, श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त अनेक सिद्धांतों और मतों को चुनौती दीं। शब्द प्रमाण से विचार प्रमाण और बुध्दि प्रमाण को उन्होंने अधिक मौलिक मान लिया। सत्यशोधक आंदोलन ने दीन-दलितों का पक्ष लेकर उनके हित की रक्षा कीं। इस दृष्टि से दलितोद्धार के इतिहास में इस आंदोलन का स्थान ऊँचा माना जाएगा। यह आंदोलन शोषितों, दुर्बलों की विद्रोहमयी चेतना की अभिव्यंजना थीं। सत्यशोधक आंदोलन ने सामाजिक दासता में अनेक बरसों तक दबें हुए दलितों को प्रतिकार की आवाज दीं। 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना करने के पूर्व महात्मा फुले ने दलितोद्धार के कार्य का प्रारंभ किया था। इसी तरह दलितोद्धार तथा दलित जागरण के लिए सामाजिक समता के लिए, सामाजिक दासता के विरोध में आंदोलन शुरु करके दीन-दुर्बलों को जागृत किया। शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा प्रसार पर भी बल दिया। महात्मा फुले का जीवन कार्य दलितोद्धार और समाज परिवर्तन की दिशा में उठाया गया एक ठोस कदम था।

महर्षि आण्णासाहब कर्वे

समाज सुधारक के रुप में महर्षि कर्वेजी ने सुधार का कार्य किया। उन्होंने सुधार कार्य में कमजोर, ग्रामीण और जातिव्यवस्था के भक्ष्य बने परावलंबी लोगों के लिए प्रयास किया हैं। प्रचलित रुढ़ियों की धारा के विरुद्ध उन्होंने लोगों को प्रेरित करके नविनता के प्रचारार्थ आवश्यक संस्थाओं की स्थापना कीं। महिलाओं और ग्रामीणों का स्तर सुधारने के लिए शिक्षा की व्यवस्था कीं। इस भांति महर्षि कर्वे सामाजिक समता के प्रतिपादक थे। किंतु यह समता तभी स्थापित हो सकेगी जब जाति पद्धती को सामर्थ्यपूर्वक निष्प्रभ बना दिया जाएगा। इसलिए

उन्होंने 'समता संघ' शुरु करके 'जाति उच्छेदन' संस्था की स्थापना की, तत् पश्चात उन्होंने 'सामाजिक समता' का समर्थन करते हुए मासिक बुलेटिन प्रकाशित करना शुरु किया। सामाजिक समता के विचार को दलित कल्याण का एक उपाय के रुप में महर्षि कर्वे ने प्रस्तुत किया था। उन्होंने जाति व्यवस्था को जड़ से नष्ट करने का कार्य किया। वे कहते थे - "मैं अत्यंत सुखी हूँ। मुझे जो संभव था वह सारा मैंने किया। केवल विधवाओं के लिए, नारी शिक्षा के लिए, दलितों के लिए जितना संभव था उतना प्रयत्न करता रहा।" उन्होंने 'जहाँ चाह, वहाँ राह' यहीं नया मार्ग ढूँढ निकाला। वे जीवन के नये मार्ग खोजते रहें। इसलिए उन्होंने अपने जीवन में आनंद की अनुभूति की। समाज सुधार का कार्य आंतरिकता एवं मन की गहराई से किया। दलितों में चेतना जगाकर जागरण का कार्य किया।

यह स्पष्ट है कि, स्वातंत्र्यपूर्व काल से लेकर आज तक व्यक्तिगत और शासकीय स्तर पर दलितोद्धार और दलित जागरण के प्रयत्नों के फलस्वरुप अस्पृश्यता की तीव्रता कम होकर दलित अपने अधिकार, समता, मुक्ति के लिए सजग बनते जा रहें है। यहाँ डॉ.आम्बेडकर, महात्मा गांधी, महात्मा फुले, महर्षि कर्वे आदि के कार्य का संक्षित उल्लेख किया हैं। इनके साथ-ही-साथ वि.रा.शिंदे, शाहू महाराज, सावरकर, गोपाल कृष्ण गोखले, सयाजीराव गायकवाड, लोकहितवादी आदि ने भी अपना योगदान दिया हैं। शिक्षा, समानता, संविधान, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि स्तर पर कार्य शुरु हुआ। परिणाम स्वरुप दलितों में चेतना का संचार हुआ। अपने अस्तित्व के लिए दलित विद्रोही बना। वही विद्रोह चेतना का प्रतिक बना। साहित्यिकारों ने भी धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धार्मिक उदारता का प्रतिपादन किया और सामाजिक समता का महत्व स्पष्ट किया। इससें भी दलित प्रभावित हुआ और उसमें चेतना का निर्माण हुआ।

6) दलित चेतना की आवश्यकता :-

भारत में हजारों बरसों से हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथों के आचरण सिध्दांतों के बोझ को अपने सिर पर ढ़ोने वाले 'दलित' वैज्ञानिक युग में भी उस बोझ से मुक्त नहीं हैं। दलितों को प्राचीनता के मानवताशून्य, भेदनीतियुक्त और एकांगी विचारों का स्वीकार कहाँ तक संभव हैं? क्या वे अन्य वर्गों की तरह बंधन मुक्त और सम्मानपूर्ण जिंदगी के हकदार नहीं है? आदि कई प्रश्नों में समाज अटका हुआ हैं। भारतीय उच्चवर्णियों को दलितोद्धार की यह बात कभी तीव्रता से महसूस नहीं हुई। उन्होंने दलितों को दबाकर अपनी सेवा में ही लगाया। क्षुद्र जन्म से अत्यंत नीच हैं, ऐसा मानना सामाजिक अन्याय हैं। इस पर भी कोई विचार नहीं करता था।

आर्थिक नीति साम्राज्यवादी होने से जमींदारों, मजदूरों में प्रतियोगिता शुरु हुई। प्रतियोगिता में कमजोर, दरिद्री तो टिकता नहीं। इस बात का अनुभव दलितों को आ गया। दलित स्पृश्यों के आश्रित होने से उनकी जान स्पृश्यों के हाथ में थी परंतु स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद मिटना यह घटना दलितों के सामाजिक जागरण के लिए उपकारक सिध्द हुई।

प्राचीन भारतीय समाज के गठन में क्षुद्र तो परावलंबी, पराधीन सेवक थे। प्राचीन काल में सामाजिक जीवन में बहिष्कृत, निर्दलित जो लोग थे, वे तो क्षुद्र - अति क्षुद्र ही थे। उनके जीवन स्तर को उपर उठाने का मौका नहीं दिया जाता था। कुछ अपने उद्धार का मार्ग ढूँढते थे। अनिर्वासित क्षुद्र मंदिर प्रवेश या रामायण, महाभारत, पुराण आदि के श्रवण से भक्ति-मार्ग द्वारा आत्मोन्नती कर रहे थे। परंतु निर्वासित क्षुद्रों को बहिष्कृत किया जाता था। दलितों में अधिकांश जंगली टोलियों का समावेश होता था। इन्हें ही बाद में 'दलित' नाम प्राप्त हुआ। निषाद और चांडाल इनके उदाहरण हैं। इन्हें पंचम वर्ण की संज्ञा से अभिहित किया गया हैं। ग्रीक, शक, कुशान, हुण आदि परकीय लोगों को अस्पृश्य माना जाता था। आर्थिकता की दृष्टि से दलित शोषित ही था।

दलित सवर्णों, जमींदारों, ठाकुरों के यहाँ काम करते थे। खेती में मजदूरी करते थे। वे दास, गुलाम जैसी जिंदगी जीते थें। बीना महेनताना काम करते थे। राजनीतिक में चुनाव लड़ना, वोट देने का भी अधिकार नहीं था। यदि हो तो जमींदार ठाकुरों के इशारों पर वे चलते थे। रानीतिक अधिकार नहीं था। सामाजिकता की दशा दयनीय थी। मंदिर, पनघट, पाठशाला प्रवेश करना मना था। उनके पनघट, पाठशाला अलग थे। सार्वजनिक, सामाजिक समारोह में उन्हें शामिल नहीं किया जाता था। समाज से बहिष्कृत, शापित उनका जीवन था। धार्मिकता की दृष्टि से धर्मग्रंथ पठन, मनन करना मना था। भगवान का नाम लेना, बच्चों को वहीं नाम देना पाप था। यहाँ स्पष्ट है कि, दलित सभी स्तर पर शोषित था। मानव होकर भी मानव से दूर था। इसीकारण दलित में चेतना का निर्माण होना आवश्यक था। शोषित, शापित दलित चेतित बनकर स्वत्व की रक्षा का प्रयास कर रहा था। प्राचीन, शोषित दलित अब नहीं रहा। वह शिक्षित बना है, उसमें समता, समानता, अधिकार, स्वत्व का भाव पैदा हो रहा हैं। इसी कारण दलित में उत्पन्न चेतना दब नहीं जाएगी ऐसा लगता हैं। यह चेतना दलित जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण आयाम बनी हैं। सामाजिक समता, दलित जीवन का विकास, राष्ट्र की उन्नती एवं राष्ट्र के उद्धार के लिए दलितों में चेतना का निर्माण होना आवश्यक हैं।

यहाँ स्पष्ट हैं, जब दलित संगठित होगा, शिक्षित बनेगा तब संघर्ष करेगा। यह संघर्ष विद्रोह का रुप लेगा। यह विद्रोह सामाजिकता का रंग लेगा तथा उनके मूल में विकास की धारा रहेगी, तो वह चेतना बनेगी। यह चेतना जनहीत, राष्ट्रहित, देशहित के लिए कल्याणकारी होगी। इससे देश का सही अर्थ में विकास होगा, समाज का हित होगा। इसलिए दलित में चेतना का निर्माण होना आवश्यक हैं।

7) आलोच्य उपन्यासों में चित्रित दलित-चेतना :-

समाज सुधारकों ने सामाजिकता की दृष्टि से अपना कार्य किया तो साहित्यिकारों ने साहित्य के माध्यम से दलित जीवन को रेखांकित करने का प्रयास किया। उपन्यास, काव्य, नाटक, रेखाचित्र, आत्मकथा कहानी में दलितों का जीवन, उनकी समस्या, उनमें उत्पन्न चेतना,

नवजागरण आदि को चित्रित करके सामाजिक प्रतिबद्धता को प्रमाणित किया। राहुल सांकृत्यायन का 'जय यौधेय' का अर्जुन जातीयता का विरोध करता हैं। निराला के निरुपमा का कुमार ड़ि.लीट्. उपाधि पाने पर भी मोची का काम करने में अपमान नहीं मानता तो 'कुल्लीभाट' में दलित बच्चे पाठशाला में पढ़ते हैं, नागार्जुन के 'दु:ख मोचन' में चमार का मुखिया ध्वजारोहण करता हैं, तो 'परती-परिकथा' की चमार सुबंश रजिस्टर्ड विवाह करती हैं। यज्ञदत्त शर्मा के 'बदलती राहें' की शैलकुमारी एम्.ए. तक पढ़ाई करती हैं, जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' का काली संगठन बनाकर चौधरी को फटकारता हैं, आदि घटना से स्पष्ट है कि, साहित्यिकारों ने दलित चेतना को चित्रित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं।

शिवशंकर शुक्ल का 'मोंगरा', भगवतीप्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गाँव', नरेंद्रदेव वर्मा का 'सुबह की तलाश', राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास' इन उपन्यासों में भी दलित चेतना को चित्रित किया हैं। इस पर हम यहाँ प्रकाश डालेंगे।

शिवशंकर शुक्ल का 'मोंगरा' उपन्यास छत्तीसगढ़ अंचल में स्थित जनचेतना एवं दलित चेतना का प्रतिनिधी उपन्यास हैं। रइपुरा गांव में शापित, शोषित, अछूत जनजातियों में अब धीरें-धीरें नवचेतना का कैसे निर्माण हो रहा है उसका चित्रण किया हैं। चमार चरणदास परंपरागत मोची का धंदा छोड़कर सरकारी कर्ज लेकर मुर्गी पालने का धंदा करता हैं। नये व्यवसाय करनेवाला, परंपरागत जाति-प्रथा को ठुकरानेवाला, जमींदारों के अन्याय का मुकाबला करनेवाला चरणदास हैं।

इसी उपन्यास की नायिका 'मोंगरा' भी चेतित नारी हैं। उसका पति फिरन्ता आफिम गांजे की कमाई करता हैं। उसे वह छोड़ना नहीं चाहता। मगर मोंगरा उसे सच्चाई, ईमानदारी और मेहनत का रास्ता बताती हैं। अवैध धंदा करनेवाले फिरन्ता को पुलिस गिरफ्तार करती हैं, घर की तलाश लेती हैं। तब उसे अच्छा नहीं लगता। जब पुलिस मोंगरा को रिश्वत के रुप में पैसे माँगते है, तब वह उसका विरोध करते हुए कहती है - ''भइया, क्या तुम्हारी बुद्धि

जाती रही हैं? मैं तो एक कौड़ी भी नहीं दूँगी। जो सरकार का दुश्मन हैं, उसे मदद कैसे देंगे? क्या तुम नहीं जानते उन्हें पुलिस ने दारु बेचते पकड़ा हैं?''[12]

मोंगरा का विचार हैं, जो अवैध धंदा करता है, वह सरकार का दुश्मन हैं। चाहे वह कोई भी हो अर्थात पति फिरन्ता को भी सरकार का दुश्मन मानती हैं और उसे सजा होनी चाहिए, ऐसी उसकी धारणा हैं। अर्थात वह चेतित नारी का प्रतीक हैं। जीवन के बारे में उसका दृष्टिकोन सही हैं। वह मानती हैं - ''इज्ज़त की जिंदगी ही जीने के काबील होती हैं और निंदा की जिंदगी तो मौत से भी बदतर होती हैं।''[13]

यहाँ स्पष्ट है शिवशंकर शुक्लजी ने 'मोंगरा' उपन्यास में मोंगरा का चरित्र एक चेतित नारी के रुप में स्पष्ट किया है। अवैध धंदा करनेवाले अपने पति फिरन्ता के खिलाफ मोंगरा दृढ विश्वास के साथ खड़ी हो जाती है। अत: उसका विरोध करती हैं और सरकारी सुविधा का लाभ उठाकर परंपरागत धंदा छोडनेवाला चरणदास चेतित पात्र हैं। ऐसा यहाँ लक्षित होता हैं।

डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल ने 'खारे जल का गाँव' उपन्यास में विंध्याचल के देवगांव, बेवहारी गाँव की कथा हैं। जाति पंचायत और जाति-व्यवस्था का भी वर्णन हैं। इसमें चनकी एक संघर्षशील नारी हैं। खलिहान में गेहूँ-चने की 'गहाई-मिजाई' समाप्त होने पर चनकी को बखारी में अनाज रखने का काम मिलता हैं। एक बार चनकी अकेले टोकरा भर अनाज ले जाती हैं, तब किस्सूसिंह ने उसे ओसारे में पकड़ लिया। अनाज से भरा टोकरा किस्सूसिंह के ऊपर फेंककर चनकी भाग खड़ी हुई। चनकी के चिल्लाने पर छिद्दन वहाँ आ जाता हैं। किस्सूसिंह का पक्ष लेते हुए छिद्दन ने गुस्से में चनकी को एक झापड़ लगा दिया। चनकी चिखती हुई बोली - ''तू गुलामी कर अपने मालिक केर, हम न करव। हम मइके जाय रहे हन।''[14] चनकी अपनी इज्ज़त बचाने के लिए किस्सूसिंह के काम के साथ अपना घर तक छोड़ देती हैं।

जमुना मास्टर राजनीति में जात-पंचायत का विरोध करने में जूट जाते हैं। वे परिवर्तन लाना चाहते हैं। वे कहते हैं - ''मैं तटस्थ नहीं रह सकता। मैं यह सब नहीं देख

सकता। आज गरीबीं, भूख और अकाल देश की राजनीति के लिए न सिर्फ जरुरी बल्कि उर्वरक तत्व बन गए हैं।''[15]

संपन्नता आने पर न सिर्फ समज और शिक्षा बढ़ती हैं बल्कि जनता की राजनैतिक महत्वाकांक्षा और स्वाभिमान में भी बढौतरी होती हैं। उनका मानना है कि, राजनीति में परिवर्तन लाना आसान नहीं हैं। इसपर विचार करते हुए अरविंद ने कहा - ''हम लोग क्रांतिकारी मोर्चा बनाए और हर तरह के भ्रष्टाचार का विरोध करें। यदिं हमें प्रारंभिक प्रतिरोध में सफलता मिले तो पंचायत और विधानसभा के चुनाव लड़े।''[16] यहाँ पर जमुना मास्टर और अरविंद के मन में उत्पन्न हुई चेतना स्पष्ट होती हैं।

अरविंद ने 'नवयुवक क्रांतिकारी मोर्चे' का गठन कर लिया। उसका इश्तिहार दूसरें दिन दिया गया। जिसमें माँगें की थी, ''मजदूरों की कम से कम मजदूरी ढाई रुपया हो। पीने के पानी की अविलम्ब व्यवस्था हो। गांव में एक कॉलेज और एक प्राइमरी हेल्थ सेंटर खोले जाएँ।''[17]

इस इश्तिहार पर किसीने विशेष ध्यान नहीं दिया, पर तिसरें दिन सरकारी तालाब में काम करनेवाले मजदूरों ने हड़ताल की, जुलूस निकाला और रघ्घू सरपंच के घर के सामने प्रदर्शन किया। इस घटना से लोगों का ध्यान क्रांतिकारी मोर्चे की ओर गया। इस प्रकार मजदूरों में जिस चेतना के दर्शन दिखाई देते है वह भविष्य की सफलता का संकेत दे रहे थे। ऐसा यहाँ प्रतित होता हैं।

ग्रामजीवन में जाति-व्यवस्था का विरोध हो रहा हैं। मंदिर प्रवेश निषिध्द का विरोध करते हुए सुग्रीव कहता है - ''ई बड़कवा - छोटकवा यहाँ नहीं चलेगा, ई भगवान का दरबार हैं।''[18] मंदिर में सभी समान हैं, यह कथन नई चेतना का प्रतिक हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में अरविंद, सुग्रीव प्रगतिवादी चेतना के पात्र हैं। अरविंद सहकारी उपभोक्ता भांडार का उद्‌घाटन एक चमार के हाथ से करवाता हैं। यह घटना चेतना का प्रतिक

हैं। पुलिस, ठाकुर की मनमानी का भी विरोध करते हैं। यहाँ स्पष्ट हैं, शिक्षा प्रसार, राजनीतिक परिवर्तन के कारण अब धीरें-धीरें दलितों में संगठन हो रहा हैं। वे अधिकार के लिए जाग उठे हैं। अपना पारिवारिक जीवन उन्नत करने में सरकारी योजनाओं का लाभ उठा रहें हैं, ऐसा लगता हैं।

नरेंद्रदेव वर्मा लिखित 'सुबह की तलाश' में छत्तीसगढ़ के अमोलीडीह गांव में जनचेतना के उभरते विद्रोह को उचित दिशा देने का एक सार्थक प्रयास किया हैं। गांव की शोषित, पिछडी, अछूत जनजीवन की छवीं चित्रित की हैं। फगुवा पंडित, सोमेश्वर, फगुवा की माँ आदि नए विचारों के वाहक लगते हैं। आंदोलन, संगठन के बल पर अन्याय, जातीयता, भेदाभेद, शोषण के खिलाफ वे लोगों में चेतना जगाते हैं। अन्याय, अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करना, दलित, पीड़ित के प्रति हमदर्दी दिखाना उनकी विशेषता हैं। जातीय भेदाभेद को उखाड़कर फेंकना, वंशाभिमान कुलमर्यादा का उल्लंघन करना, आदि में उनके क्रांतिकारी रुप स्पष्ट होते हैं। निम्न वर्ग के लिए मंदिर प्रवेश, भगवान के नाम पर अछूत बच्चों के नाम रखना मना था। उसके खिलाफ चेतना निर्माण करते हैं।

फगुवा पंडित का चरित्र चेतना, जनजागृती का प्रतिक हैं। वह स्वतंत्रता के हेतु से जगह-जगह आंदोलन की भूमिका का निर्माण करता हैं। अपने जीवन को वे स्वतंत्रता की बलि वेदी पर चढ़ा देते हैं। समाज में व्याप्त, अन्याय-अत्याचार का साहस के साथ सामना करना, दलितों और पीड़ितों के लिए अपनी समस्त सहानुभूति देना आदि फगुवा पंडित की अन्यतम प्रवृत्ति हैं। ग्राम्य जीवन में स्थित जाँति-पाती के कठोर बंधन फगुवा पंडित ने ही छिन्न-भिन्न किए। उन्हें गांववालों से प्रताड़ित होना पड़ा। अपने वंशाभिमान और कुल-मर्यादा का वे उल्लंघन करते हैं, यह उनका क्रांतीकारी कदम था। उनमें संगठन की अद्‌भुत क्षमता दिखाई देती हैं। वे गांव में दलितों के रक्षक बन जाते हैं। ऐसे चरित्र मरकर भले ही समय के किसी अंतरकोने में पड़े रहे किंतु जब भी उनपर किसी सृजनधर्मी चेतना की दृष्टि पड़ती हैं, तो वे अपनी आभा से चेतनामय, एवं गौरवमय हो उठते हैं। निर्भिक, निश्चल व्यक्तित्व ही इन परिस्थितियों

के बीच उभरता हैं। संयम, आस्था, त्याग और लोकसेवा की जो भावनाएँ उसके भीतर हैं, वह सचमुच उस युग की सामाजिक चेतना की उर्ध्वगामिनी ध्वजशिखाएँ हैं।

जब चमार मंदिर में प्रवेश करता हैं, मंदिर भ्रष्ट होने की बात की जाती हैं तब फगुवा कहता है - ''जो देवता हरिजनों के दर्शन से, स्पर्श से अपवित्र हो जाता है। मैं उसे देवता नहीं सैतान मानता हूँ। देवता तो सर्वजन-तारक, सर्वजन-सुखदायक होते हैं, जो लोग आदमी-आदमी में भेदभाव करते हैं, वे धर्म की खाल ओढ़े अधर्मी और बर्बर भेड़िये हैं।''[19] यह मंदिर प्रवेश की घटना नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश की याद दिलाती हैं।

ठाकुर रणधीर अशक्त कालें आदमीं पर कोड़े बरसाता हैं, तब सोमेश्वर कोड़े को पकड़कर कहता हैं - ''आपको लज्ञा आनी चाहिए। आदमी पर जो यह अत्याचार कर रहें हैं, वह पशुओं पर भी नहीं किया जाता।''[20]

फगुवा की माँ (ब्राह्मण) जातीयता का विरोध करके मरार सोमेश्वर को अपने घर में भोजन देती हैं तथा दोनों के बर्तन स्वयं मांजती हैं। तब सोमेश्वर कहता हैं - ''आप ब्राह्मण हैं, और मैं हूँ मरार। दाई मांजेगी तो मुझे पाप नहीं लगेगा ?'' तब फगुवा की माँ कहती हैं - ''अरे नहीं बेटा जैसा फगुवा, वैसे ही तुम हो। तुम थाली में हाथ धो लों मैं माँज लूँगी।'' यह कथन चेतना का प्रतिक ही हैं।

सोमेश्वर अध्यापक हैं। मरार की बस्ती में पाठशाला खोलता हैं। बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता हैं। इस घटना से गांव में हलचल मचती हैं। लोग सोमेश्वर को पापी समझकर मारना चाहते हैं क्योंकि उसने सारे गाँव को उत्तेजित किया था। गांव की चारागाह की जमीन को तोड़कर उसने देवता को नाराज कर दिया हैं ऐसा लोगों का मानना हैं। उस समय फगुवा पंडित उसकी रक्षा करता हैं। दलित-पीड़ितों के प्रति हमदर्दी दिखाना यह उनकी विशेषताएं हैं। जातीय भेदाभेद को उखाड़कर फेंकना उन्हें इन्सानियत लगती हैं। वंशाभिमान तथा कुलमर्यादा का उल्लंघन करना आदि में उसका क्रांतिकारी रुप स्पष्ट होता हैं। सोमेश्वर दलितों में चेतना जगाने में सफल रहा हैं, ऐसा लगता हैं।

राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में मानवीय अधिकार और अस्मिता के लिए छटपटाते एक वर्ग की संघर्ष चेतना को उजागर करने का प्रयास किया हैं। दमकड़ी गांव के हरिजनों और आदिवासियों की जनचेतना चित्रित की हैं। चमार नाथूराम की यह कथा हैं। श्यामा, शैल एवं चमारों के लिए पीने के पानी की सुविधा नहीं है तथा अछूतों के घर खाना भी मना था। श्यामा, उनमी माँ, दिनेश आदि प्रगतिवादी चेतना के प्रतिक हैं।

छुआछूत पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए दिनेश कहता है, "वेश्यावृत्ति और छुताछूत जैसी खतरनाक बिमारियाँ समाज के एक वर्ग द्वारा दूसरें वर्ग पर किए जा रहें चुपचाप अन्याय और अत्याचार का ही नतीजा हैं। चेतनाहीन इन्सान को जानवरी जिंदगी जीने के लिए मजबूर किए जाने की भद्दी मिसाल है।"[21] यहाँ स्पष्ट है जातीयता एक बिमारीं है। इसे अन्याय, अत्याचार के परिणाम के रुप में स्विकार किया है। दिनेश का यह कथन समाज व्यवस्था पर कडी चोट करता हैं।

रावसाहब फत्तेसिंह के बेटों के आतंक का संगठन शक्ति के बलपर मुकाबला करनेवाली श्यामा कहती हैं - "हम उनका नामोनिशान मिटा सकते हैं।"[22] वह पहरुआ गांव की हरिजन औरतों का संगठन बनाकर पुलिस और जगदीश के साथियों का मुकाबला करती हैं। यहाँ दलित नारी का संगठन होना एक महत्वपूर्ण घटना हैं। सरपंच रामदास श्यामा के सामने अपना पराजय स्वीकार करते हुए अपनी पगड़ी श्यामा के पैरों पर रखता हैं। अंत में अछूतों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था करने में वह सफल रहती है। यहाँ नारी एक शक्ति का प्रतिक रही हैं।

जमना भी विद्रोह का प्रतिक हैं। राबर्ट द्वारा लड़की की अस्मत लूटना, भीड़ का जमा होना, प्रदर्शनी चिज के समान लोगों द्वारा देखना यह देखकर जमना बौंखला उठती हैं। वह कहती हैं, "कमींनों ! तुम्हारी बहु-बेटियों की लाज तुम्हारी आँखों के सामने एक विदेशी फिरंगी लूट रहा हैं और तुम इस तरह से पत्थर के बूत बने खड़े हो। डूब मरो कुत्तों, चुल्लू भर

पानी में डूब मरों।''[23] जमना भीड़ की तरफ घृणा से देखती हैं। फिर राबर्ट की तरफ जाती हैं। सूरज और रुपा उसके पिछे जाते हैं। जमना दरवाजा खटखटाती हैं, उसके साथ छोटे-छोटे पत्थर बच्चे दरवाजों पर मारते हैं। भीड़ कुछ-न-कुछ भयंकर घट जाने की आशंका से चुप रह जाती हैं। राबर्ट के बाहर आनेपर जमना उसे ''हरामजादें ! कमीनें !! कुत्ते !!!''[24] ऐसी गालियाँ देती हुई चमगादड़ की तरह उसकी टाँग पर चिपट जाती हैं। यहाँ स्पष्ट हैं, जमना, श्यामा चेतित नारी के प्रतिनिधी पात्र हैं। नारी को खिलौना मानने की घिनौनी प्रवृत्ति पर प्रहार करनेवाली जमना और श्यामा आदर्श नारी पात्र हैं। दलित नारी भी जाग उठी हैं। यहाँ नारी का जागृत होना सशक्त तथा प्रगतिशील समाज की निशानी हैं। ऐसा लगता हैं।

इसप्रकार उपन्यासकारों ने इन आँचलिक उपन्यासों में चित्रित चेतना को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया हैं। ठाकुर, जमींदारों द्वारा होनेवाले अन्याय, अत्याचार का विरोध करने की क्षमता आम आदमी में किस तरह उत्पन्न हो रहीं हैं, इसका चित्रण यहाँ पर दिखाई देता हैं।

8) निष्कर्ष :-

चतुर्थ अध्याय 'आलोच्य आँचलिक उपन्यासों में दलित चेतना' में चेतना का निर्माण, चेतना का अर्थ, दलितों में चेतना निर्मिती के कारण, दलितोद्धार एवं दलित, जागरण का कार्य, दलित चेतना की आवश्यकता, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक चेतना तथा आलोच्य उपन्यासों में चित्रित दलित चेतना स्वरुप का यथार्थ चित्रण स्पष्ट किया हैं।

दलितों में जो चेतना निर्माण हुई उस चेतना का उन्होंने अपने शोषित, पीड़ित जीवन में बदलाव लाने के लिए उपयोग किया। दलित एवं दलितोद्धार का कार्य करनेवाले समाज सुधारकों के साथ मिलकर उन्होंने अपना जीवन सुधार लिया। दलितों की पीड़ा समझने वाले डॉ.बाबासाहब आम्बेडकर, महात्मा गांधी, महात्मा फुले तथा महर्षि कर्वेजी ने उनको जगाने का कार्य किया।

दलित जागरण और दलितोद्धार का कार्य करते समय दलित जीवन में दलित चेतना की आवश्यकता हैं। राजनीतिक स्तर पर उनमें बदलाव आए हैं। सामाजिक स्तर पर उन्हें समाज में, सवर्णों के साथ सम्मान से जिंदगी जीने का मौका दिया जा रहा हैं। धार्मिक दृष्टि से धर्म के नामपर बाह्याडंबर को नष्ट करने का प्रयत्न हो रहा हैं। रोजी-रोटी कमाने का जरिया बदलकर आर्थिक दृष्टि से उनका शोषण कम हो रहा हैं, आदि को भी यहाँ स्पष्ट किया हैं।

दलित आंदोलन के संदर्भ में उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं ऐसा लगता हैं। दलितोद्धार के लिए राजनीतिक नेताओं, समाज सुधारकों ने कार्य किया । उसे पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों ने वाणी दे दीं। संविधान और सरकारी प्रयत्नों ने उसे बल दिया। परिणामत: आज यह शोषित, उपेक्षित, पिछडा समाज विकास की ओर बढ़ रहा हैं लेकिन यह गति धीमीं है। अशिक्षा, अज्ञान, अर्थाभाव, संकुचितता, दलित नेताओं में एकता का अभाव, राजनीतिक स्वार्थ, इच्छा शक्ति की कमी आदि कई इसके कारण हैं। अत: दलित चेतना एवं उद्धार के लिए शिक्षा ही एकमात्र साधन हैं। 'खारे जल का गाँव', 'सुबह की तलाश', आदि उपन्यासों में बुनियादी शिक्षा पर बल दिया हैं। आश्रम, स्कूल, प्रौढशिक्षा, दलित बस्ती में स्कूल आदि का चित्रण इसका प्रमाण हैं।

दलितों में चेतना पैदा करके उनकी पीड़ा दूर करना दलित आंदोलन का लक्ष्य हैं। इसके लिए संगठन की अनिवार्यता हैं। 'खारे जल का गाँव' का अरविंद, सुग्रीव, 'जंगल के आसपास' की श्यामा, जमना, दिनेश यहीं कार्य करते हैं। यहाँ स्पष्ट है, दलित संगठन दलितोद्धार का सोपान हैं। दलित नारी सजग बन रही हैं। इस कार्य के लिए इच्छाशक्ति, त्याग की आवश्यकता हैं। दलित समाज स्वयं जाग उठेगा तभी दलितोद्धार होगा। जब तक समानता की धारणा नहीं बनती तब तक सामाजिक एकता का होना कठिण हैं।

समानता से अधिकार की प्राप्ती, शिक्षा से चेतना, चेतना से परिवर्तन, परिवर्तन से विकास, विकास से प्रगति यहीं विकास के सोपान हैं। आज का शिक्षित दलित चेतित हो रहा हैं। आज का दलित साहित्य दलित चेतना, संगठन, जागरण आदि का प्रतिक हैं। दलित जीवन में आज धीरें-धीरें विकास की रोशनी दिखाई दे रही हैं। अत: हम कह सकते हैं कि, आज के उपन्यासों में दलितों का जीवन काफी हद तक सफलता के साथ चित्रित हुआ है, ऐसा लगता हैं।

संदर्भ

1) डॉ. मोहन कपूर, 'हिन्दी उपन्यासों में चेतना प्रवाह पध्दति', साकेत, दिल्ली, प्र.सं.1988, दिल्ली, पृष्ठ 3

2) हंस - जनवरी - 1999, पृष्ठ 150

3) डॉ. सुरेश बत्रा, 'हिंदी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य', रचना प्रकाशन, जयपुर 1996, पृष्ठ 8

4) राहुल सांकृत्यायन, 'जय यौधेय', किताब महल, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ 206

5) गो.प.नेने, श्रीपाद जोशी, 'बृहत मराठी - हिंदी शब्दकोश, प्र. सं. 1971, संगम प्रेस, पुना, पृष्ठ 314

6) गो.प.नेने, श्रीपाद जोशी, 'बृहत हिंदी-मराठी शब्दकोश, प्र.सं.1965, संगम प्रेस, पुना, पृष्ठ 239

7) डॉ.ब्रजमोहन, 'मिनाक्षी हिंदी-अंग्रेजी कोश', प्र.सं.1980, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 239

8) डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, 'आंचलिक उपन्यास : अनुभव और दृष्टि, प्र. सं. 1995, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ 8

9) डॉ. आनंद वास्कर, 'हिंदी साहित्य में दलित चेतना', प्र. सं. 1987, विद्या प्रिंटर्स, कानपुर, पृष्ठ 63

10) संपा. यशवंतराव चव्हाण मुक्त विद्यापीठ, दलित साहित्य : वाङ्मय प्रवाह, प्र.सं.1992, पृष्ठ 11

11) डॉ. बलवन्त साधू जाधव, 'प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना', प्र. सं. 1992, अलका प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ 41

12) शिवशंकर शुक्ल, 'मोंगरा', प्र. सं. 1970, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 54

13) वही, पृष्ठ 52

14) डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल, 'खारे जल का गाँव', प्र. सं. 1972, स्मृती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 76

15) वही, पृष्ठ 82

16) वही, पृष्ठ 83

17) वही, पृष्ठ 85

18) वही, पृष्ठ 12

19) नरेंद्रदेव वर्मा, 'सुबह की तलाश', प्र. सं.1972, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ 44

20) वही, पृष्ठ 34

21) राकेश वत्स, 'जंगल के आसपास', प्र. सं. 1982, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली. पृष्ठ 82

22) वही, पृष्ठ 116

23) वही, पृष्ठ 144

24) वही, पृष्ठ 145